Pragya Darshan 2023, 5(1): 15-18
ISSN: 2542-2634 (print)
© DEPAN, TU, University
Research Article

समकालीन विमर्श के विभिन्न आयाम

श्वेता दीप्ति
हिन्दी केन्द्रीय विभाग, कीर्तिपुर, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमान्डू, नेपाल ।
इमेल: swetadeepti1810@gmail.com

शोध-सार

यह सदी विमर्शों की सदी है । यानि समाज की किसी भी समस्या पर चर्चा-परिचर्चा, संवाद, तर्क-वितर्क आदि । दूसरे शब्दों में कहा जाये तो जब व्यक्ति किसी समूह में किसी विषय पर चिन्तन अथचा चर्चा-परिचर्चा करता है तो उसे विमर्श कहा जाता है या जब कोई व्यक्ति किसी विषय को लेकर अकेले में गहन, चिन्तन, मनन करके किसी समूह में जाकर उस विषय पर अन्य व्यक्तियों से तर्क-वितर्क करता है तो उसे विमर्श कहते हैं ।

संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी शब्दकोशों में बहुत से विद्वानों द्वारा विमर्श शब्द को परिभाषित किया गया है । डॉ भोलानाथ के अनुसार विमर्श का अर्थ है- ''तबादला-ए-खयाल, परामर्श, मशविरा, राय-बात, विचार विनिमय, विचार विमर्श, सोच विचार।'' ज्ञान शब्दकोश में विमर्श का तात्पर्य 'विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्क, ज्ञान।' आदि के रूप में अंकित किया गया है । मानक हिन्दी कोश में विमर्श का अर्थ इस प्रकार है -'सोच विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना । किसी बात या विषय पर कुछ सोचना समझना । विचार करना । गुण-दोष आदि की आलोचना या मीमांसा करना (डेलिबरेशन)। जाँचना और परखना । किसी से परामर्श या सलाह करना आदि ।

आज समाज का हर वह तबका जो अधिकारों से वंचित है उसने अपने हक, अधिकार और अपनी अस्मितागत पहचान के लिए निर्णायक लड़ाई छेड़ रखी है । ध्यान देने की बात यह है कि यह लड़ाई किसी के विरूद्ध नही, बल्कि अपने या अपने समुदाय के पक्ष में लड़ी जा रही है । इन लड़ाइयों के पीछे एक सुविचारित दर्शन कार्य कर रहा है । हिंदी साहित्य में समाज के ज्वलंत विषयों को कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा और अन्य विधाओं के माध्यम से समाज का ध्यान अपनी ओर खींचा जा रहा है । शोषित समाज के हक के लिए लेखन कार्य किया जा रहा है । विमर्श साहित्य वर्तमान समय में लगभग सभी विश्वविद्यालयों के हिंदी या अन्य भाषाओं के पाठ्यक्रम का हिस्सा है । प्रस्तुत आलेख में साहित्यिक विमर्श के आयामों पर चर्चा की गई है ।

शब्दकुँजी–स्त्री विमर्श, सार्वभौम भगिनीवाद, दलित विमर्श, वृद्ध विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श किन्नर विमर्श, किसान विमर्श आदि ।

समस्या कथन : वर्तमान में साहित्य में वर्णित विमर्शों की उपादेयता पर दृष्टिपात करना ।

शोध पद्धति : सामयिक विमर्शों का विधागत विश्लेषणात्मक अध्ययन

विषय-प्रवेश

स्त्री विमर्श

समकालीन विमर्श की चर्चा में सबसे पहले बात करुँ नारी-विमर्श की, जो आज साहित्य में अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा चुका है । वर्तमान समय में यह एक विमर्श मात्र नहीं रह गया है, बल्कि एक आन्दोलन का रूप अख्तियार कर चुका है । सदियों से नारी शोषित रही है यही वजह है कि आज समाज में नारी अपनी समान उपस्थिति दर्ज कराना चाहती है । आज उसके अधिकार पाने का संघर्ष साहित्यिक विमर्श का हिस्सा बन चुका है । साहित्य और संस्कृति के फलक पर इसकी व्याप्ति जहाँ विचारोत्तेजक रही, वहीं निरंतर जटिल होती सामाजिक-संरचना के दायरे में कई आयाम उभरे हैं । यह सच है कि आज समाज में नारी की स्थिति पहले की तुलना में बेहतर हुई है, किन्तु यह भी सच है कि यह स्थिति बहुत संतोषजनक भी नहीं है । वस्तुत: स्त्री-विमर्श सहज एवं बौद्धिक विमर्श नहीं है, यह सामाजिक परिवर्तन का माध्यम है । नारी यह बताना चाहती है कि यह दुनिया उसकी भी है । वह भी सृष्टि का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है । उसे भी वही अधिकार और स्थान चाहिए जो समाज मे पुरुषों को प्राप्त है । वह किसी भी तरह पुरषों से कमतर नहीं है और न ही उसे कमतर आँका जाना चाहिए । यह विमर्श स्त्री सहित समूची मानवजाति की स्वतंत्रता का पक्षधर है । कई दशकों पहले महादेवी वर्मा ने भी इस ओर महत्त्वपूर्ण संकेत किया था । स्त्री-विमर्श को प्राय: प्रतिशोध-पीड़ित रूप में देखा जाता रहा है, जबकि वह ऐसा है नहीं । यह अधिकार और न्याय के लिए उठाई गई स्वाभाविक आवाज है । इसी तरह यह अपने मूलार्थ में पुरुष बनने का समर्थक आंदोलन भी नहीं है । यह आंदोलन 'पितृसत्तात्मक समाज में पल रहे स्त्री संबंधी पूर्वाग्रहों' जैसे-स्त्री को हीनतर और भोग का साधन मात्र मानने के खिलाफ है । इसका एक और वैशिष्ट्य इस बात में है कि यह सार्वभौम भगिनीवाद (यूनिवर्सल सिस्टरहुड) के मूलमंत्र को हर स्तर, हर वर्ग, हर नस्ल, हर देश तक पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील है । यदि यह कहीं आक्रामक हुआ है तो उसके पीछे शताब्दियों की सामाजिक जकड़न से मुक्ति की तीखी छटपटाहट कारण रही है ।

"वस्तुत: सामंती व्यवस्था में नारी सिर्फ एक वस्तु है, संपत्ति है, संभोग और संतान की इचछा पूरी करने वाली मादा है । यहाँ सेवा, उपयोग और वफादारी के बदले पुरष नारी को उसी तरह सजाता, सुरक्षा देता और उसकी जिम्मेदारी लेता है जैसे अपने हाथियों, घोड़ों और बैलों को सजाता, संवारता और संरक्षण देता है ।"१

इस सच्चाई को इब्सन ने अपने नाटक 'डॉल्स हाउस' में प्रस्तुत किया है । पशुओं , गुलामों और स्त्रियों की वफादारी, धर्मपरायणता, मालिक के प्रति

जान न्योछावर करने की बलिदान भावना, त्याग की कहानियों से सारा मध्ययुग भरा पड़ा है । यही उनका स्त्रीत्व है और यही शील । स्त्री विमर्श के सन्दर्भ में पाश्चात्य साहित्य में सिमेन द बुवा की 'द सेकिंड सेक्स' एक अच्छे स्तर की वैज्ञानिक पुस्तक है । जिसमें स्त्री के साथ हो रहे योन शोषण पर प्रकाश डाला गया । इसके बाद बेट्टी फाइडन की किताब 'द फेमिनिन मिस्टीक' की चर्चा कर सकते हैं जिसमें यह सिद्ध किया गया कि, पुरुष प्रधान समाज में मनोवैज्ञानिक दवाब डाल कर स्त्रियों को वासना पूर्ति का साधन बनने और माँ गृहिणी तथा रमणी की भूमिका स्वीकार करने के लिए विवश किया गया । इसी से स्त्रियों की मौलिक प्रतिभाएँ नष्ट हुई । समाज में उच्छृंखलता और अस्थिरता बढी ।

जहाँ तक हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की शुरुआत की बात है तो इसे छायावाद काल से माना जा सकता है । महादेवी वर्मा की कविताओं में वेदना का विभिन्न रूप देखने को मिलता है । लेकिन महादेवी वर्मा ने भारतीय समाज में स्त्री-अस्मिता के प्रश्न सीमोन द बउआर से भी बहुत पहले सन् १९४२ में ही 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के माध्यम से उठाया था । उनकी श्रृंखला की कड़ियाँ स्त्री-सशक्तिकरण का सुन्दर उदाहरण है । जिसमें नारी-जागरण एवं मुक्ति का सवाल को उठाया गया है । यह पुस्तक एक प्रकार से स्त्री-अधिकारों का दस्तावेज़ है। इसका प्रमाण महादेवी वर्मा के इस कथन से ही मिलने लगता है, जब वह कहती हैं कि, "भारतीय नारी भी जिस दिन अपने संपूर्ण प्राणप्रवेग से जाग सकेगी उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं । उसके अधिकारों के संबंध में यह सत्य है कि वे भिक्षावृत्ति से न मिले हैं, न मिलेंगे, क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है ।"२

"एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रुरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दंड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहती इस तरह पग-पग पर पुरुष से सहायता की याचना

न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र सी है वह जितनी ही पहुंच के बाहर होती है, पुरुष उतना ही झुंझलाता है और प्राय: यह झुंझुलाहट मिथ्या अभियोगों के रूप में परिवर्तित हो जाती है ।"३

- यह वाक्यांश सालों पहले महादेवी वर्मा की लिखी कहानी 'लछमा' से लिया गया है, वाकई पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री-पुरुष की सामाजिक व मानसिक स्थिति का ऐसा सूक्ष्म विश्लेषण कर पाना किसी आम इंसान के बस की बात नहीं है । महादेवीजी ने भारतीय स्त्री-जीवन के अनदेखे पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इसी कारण, स्त्री विमर्श के संदर्भ में उनकी गद्य रचनाओं का मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है । महादेवी नारी-चेतना की भारतीय परंपरा पर विचार करनेवाली अद्वितीय विचारक रही हैं । उनके विचार रेखाचित्रों से होकर श्रृंखला की कड़ियाँ बनकर हमारे सामने उभर आते हैं । 'श्रृंखला की कड़ियाँ' भारतीय नारी की समस्याओं का जीवंत विवेचन ही है ।

प्रेमचन्द से लेकर राजेन्द्र यादव तक अनेक पुरूष लेखकों ने भी नारी समस्या को उकेरा है । लेकिन उस रूप में नहीं जिस रूप में स्वयं महिला लेखिकाओं ने लेखनी चलायी है । हिन्दी कथा-साहित्य में नारी-मुक्ति को लेकर स्त्री-विमर्श की गूंज १९६० ई में पश्चिम में हुआ था । आधुनिक हिन्दी साहित्य, विशेषकर कथा साहित्य में पुरूष रचनाकारों की मान्यताओं के आगे लेखिकाओं ने स्त्री-विमर्श को आगे ले जाने की बागडोर अपने हाथों में ले ली । इस संवर्ग की पहली लेखिका के रूप में कृष्णा सोबती का नाम लिया जा सकता 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी' जैसे इनके कई उपन्यास स्त्री विमर्श के प्रारम्भिक आधार माने जा सकते हैं । इस श्रृंखला में उपन्यास लेखिकाओं की एक सूची है, जिनमें प्रमुख नाम हैं उषा प्रियम्वदा, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, अलका सरावगी, राजी सेठ, मैत्रेयी पुष्पा, मृणाल पाण्डेय आदि । प्रोफेसर रोहिणी अग्रवाल 'स्त्री-विमर्श' का अर्थ समझाते हुए लिखती हैं- ''स्त्री को केंद्र में रख कर समाज, संस्कृति, परम्पराएँ एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत प्रक्रिया । . . . स्त्री विमर्श के अंतर्गत अतीत या समकालीनता प्रमुख नहीं रहती वरन् भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालखण्डों पर एक-दूसरे की अन्वति एवं संगति में विश्लेषण करने का भाव प्रधान रहता है । स्त्री विमर्श चेतना के प्रसार का आख्यान है।'' ४

हिंदी में स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों तक ही सीमित नहीं है । उसके और भी कुछ आयाम हैं और इन आयामों को भी तलाशने की जरूरत हमारे आलोचकों को है न कि सिर्फ चंद नामों के आधार पर एक खास दायरे में बाँधने की । कला साहित्य के हर विचारधारात्मक संघर्ष के पीछे अपने समय और समाज के परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना जरुरी है । यहाँ तक कि स्त्री की स्थिति को निर्धारित करने वाले संस्थाओं में आये परिवर्तनों को भी लक्ष्य करना जरुरी है ।

दलित विमर्श

इसके बाद जो सबसे अधिक चर्चित विमर्श है वह है दलित विमर्श । दलित साहित्य वर्तमान का ऐसा विमर्श बन चुका है जिसका अध्ययन किए बिना सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को समझना ग़लत होगा। भारी संख्या में इस दिशा में लेखन के लिए प्रेरित होना यह बताता है कि यहाँ भी कम चेतना नहीं है बस बोलने का मौक़ा नहीं दिया गया। आज दलित विमर्श हिन्दी का ही नहीं, हिन्दी प्रदेश की सीमाओं से बाहर निकालकर बड़ा स्वरूप ले चुका है, जिसका मूल उद्देश्य है दलित जीवन की बुनियादी समस्याओं को जनता के सामने लाना। सम्पूर्ण भारतीय भाषा में दलित लेखन तेज़ी से हो रहा है।

'दलित साहित्य' के लेखन में किस-किस को शामिल किया जाए यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है। दलित साहित्यकारों का मानना है कि दलित की पीड़ाओं को वही समझ सकता है जिसने इसको भोगा है, यानि कि अनुभूति के आधार पर, जबकि दूसरा खेमा दलितों से इतर लिखे गए साहित्य को, जो दलित जीवन पर उसी भी उसमें शामिल करने की बात कर रहा है। हिन्दी साहित्य के मुख्यधारा में 'दलित विमर्श' का मुद्दा अस्सी के दशक में उभरा जो नब्बे तक आते-आते काफी चर्चित हो चुका था। साहित्य की बहुचर्चित पत्रिका 'हंस' में दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुई जो आलोचकों और पाठकों में बहुत चर्चित हुई। १९९७ में इसे राजकमल प्रकाशन ने आत्मकथा के रूप में प्रकाशित किया जो बहुत चर्चित हुआ। यहीं से दलित साहित्य, विमर्श का मुद्दा बन गया। दलित साहित्य में दलित साहित्यकार अपने जीवन के कटु अनुभवों को व्यक्त करते हैं, जिसका एक मात्र उद्देश्य यही है कि पूरी दुनियाँ यह जाने के उनके साथ क्या दुर्व्यवहार हुआ है। विख्यात दलित चिंतक कंवल भारती ने लिखा है- "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिनमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन-संघर्ष में जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है ।"५

ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, "दलित साहित्य में दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल नहीं है, बल्कि साधारण परिस्थितियों में साधारण चरित्रों का वास्तविक पुनर्सजन है। इस कार्य में दर्शन और कलात्मक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता कतई नहीं है। पाठक की चेतना और अनुभूति को प्रभावित करनेवाली गहन संवेदना से ही यह संभव है ।"६

प्रेमचंद पहले ऐसे साहित्यकार हैं जिनकी रचनाओं में दलित जीवन को प्रमुखता से स्थान मिला है। छुआछूत, जात-पात, आडंबर, कर्म-कांड आदि का वह खूब विरोध करते रहे। उनकी कहानियाँ सद्गति, कफ़न, 'ठाकुर का कुआँ' आदि में दलित जीवन को त्रासदी को बहुत गहराई से अभिव्यक्त किया गया है और साथ ही उनके साथ अन्याय करने वाले ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोगों को भी आड़े हाथों लिया है । 'सदगति' में प्रेमचंद ने जहाँ चमारों पर हो रहे शोषण और अत्याचार का मार्मिक चित्रण किया है वहीं 'पूस की रात', 'कफ़न' में दलित प्रतिरोध को साफ़-साफ़ महसूस किया जा सकता है । हालाँकि दलित साहित्यकार प्रेमचंद को दलित साहित्य के दायरे में लाना पसंद नहीं करते क्योंकि उनका मानना है कि प्रेमचंद ने कभी भी दलित जीवन की पीड़ाओं को नहीं झेला । आज दलित अपने अनुभव से गुज़र कर लिख रहा है ।

प्रेमचंद के बाद सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का उपन्यास 'चतुरी चमार', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्लीभाट' आदि रचनाएँ दलित चेतना से परिपूर्ण हैं । उनकी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' हिन्दी कविता के इतिहास का मील का पत्थर है । इसके साथ ही यशपाल की कहानी 'परदा', राहुल सांकृत्यायन की 'पुजारी', 'प्रभा और सुमेर' भी दलित जीवन की अभिव्यक्ति करती हैं ।

मार्कण्डेय, अमरकांत, राजेन्द्र यादव, नैमिशराय, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पुन्नी सिंह, प्रेम कपाड़िया, डॉ. दयानंद बटोही, डॉ. तेज सिंह, बाबूलाल खंडा, रामचंद आदि चर्चित रचनाकार हैं । महिला कथाकारों में उषा चन्द्रा, रमणिका गुप्ता, रजत रानी 'मीनू', मैत्रेयी पुष्पा, सुभद्रा कुमारी जैसे रचनाकार इसमें शामिल होकर मज़बूत लेखन किया ।

दलित लेखक समानता, सम्मान और अपनी आज़ादी के लिए लिख रहे हैं । जाति, नस्ल या रंग के आधार हो रहे भेदभाव को वह ख़त्म करना चाहता है । दलित साहित्यकार चाहता है कि समाज में धर्म, सत्ता दर्शन तथा जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता घोषित न किया जाए । सम्पूर्ण रूप में देखें तो यह जाति से मुक्ति का साहित्य है । दलित साहित्य गैर दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य से इस मायने में अलग है कि वे समन्वय की नहीं संघर्ष की बातें करते हैं क्योंकि उनके साथ अन्याय हुआ है ।

हिन्दी में दलित साहित्य का आना उसके लिए सुखद ही रहा क्योंकि यह सच है कि हिन्दी साहित्य से जुड़ते ही दलित साहित्य व्यापक स्तर पर चर्चित हुआ जिसकी पहुँच बड़ी है। दलित साहित्यकार भाषा में चमत्कार दिखाने के लिए नहीं लिखता न ही किसी को खुश करने के लिए बल्कि वह लिखता है अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए। पाठक इसीलिए उससे जुड़ भी जाता है क्योंकि उसे दलित साहित्य की संवेदना झूठी नहीं लगती है। उसमें छुपे सत्य को वह महसूसता है और उसे आत्मसात करता है। आज दलित विमर्श विश्व स्तर का मुद्दा है तो उसमें सिर्फ़ दलितों की मेहनत और दृष्टि है।

वर्तमान समय मे कई विमर्श साहित्य मे स्थान पा रहे है मसलन वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श, किसान विमर्श, पर्यावरण विमर्श, आदि ।

वृद्ध विमर्श

हिंदी साहित्य में दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, किन्नर-विमर्श (थर्ड जेंडर विमर्श) के बाद अब वृद्ध-विमर्श की भी धमक सुनाई देने लगी है । वैसे आजकल जिस तरह नई पीढ़ी, युवा पीढ़ी की चर्चा जोरों पर है, उसे देखते हुए वृद्ध-विमर्श का होना भी उचित ही लगता है । वृद्धों या बूढ़ों को लेकर आमतौर पर ऐसे लोगों की तस्वीर उभरती है जो सफेद बाल, झड़े हुए दांत, शिथिल-ऊर्जा हीन शरीर लेकर जीवन-यापन करते हैं। हिंदीवालों के बीच तो केशवदास का यह कहा खूब प्रचलित है- 'केशव केशन अस करी जस अरिहु न कराय/ चंद्रवदन मृगलोचनी बाबा कहि-कहि जाय ।' इसका मतलब यही हुआ न कि चंद्रवदन मृगलोचनी वनिताओं को आकृष्ट करने की सामर्थ्य से चूक जाने का नाम बुढ़ापा है । वैसी और भी कवियों और रसिकों की बड़ी जमात रही है, जिन्होंने वृद्धावस्था को दंतहीन, वलक्ष शीर्ष, जर्जर काया, शिथिल इंद्रियों की दशा के रूप में देखते हुए इसे कोसने में कोई कसर नहीं छोड़ी है । पर वृद्धावस्था को मात्र इस रूप में देखना एक मूल्यवान रिक्थ का सरासर अनादर करना है ।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक अनातोले फ्रांस का कथन है- "'काश! बुढ़ापे के बाद जवानी आती !' अनातोले का यह कथन बड़ा ही सांकेतिक है । जवानी वह शारीरिक अवस्था है, जो जोश, ऊर्जा, शौर्य से ओत-प्रोत होती है, जिसका उपयोग करते हुए हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से जीवन-यात्रा तय करता है और इस क्रम में वह बुढ़ापा तक पहुंचता है । बुढ़ापे में जवानी वाली ऊर्जा शक्ति तो नहीं रह जाती, रह जाता है विविध अनुभवों का भंडार । इन अनुभवों के आलोक में व्यक्ति को जवानी के अनुभव रहित जोश में किए गए अपने कई गलत निर्णयों और कार्यों का अहसास होता है, तो वह अनुताप की आंच में तपते हुए यह सोचता है कि अगर उसे बुढ़ापे में जवानी जैसी ताकत, स्फूर्ति मिल जाए तो वह पहले से बेहतर, श्रेयस्कर कार्य कर सकता है- यही आशय है अनातेले फ्रांस के इस कथन का ।"**७**

वृद्ध जीवन पर आधारित कई उपन्यास हैं जैसे -मस्तराम कपूर-'विषय-पुरुष' (१९९७) पंकज बिश्ट-'उस चिड़िया का नाम' (२००५), काशीनाथ सिंह, 'रेहन पर रग्घू' (२००६) चित्रा मुद्गल-'गिलिगडू' (२०१०) निर्मल वर्मा 'अंतिम अरण्य'(२०११), हृदयेश -'चार दरवेश' (२०११) अज्ञेय-'अपने-अपने अजनबी'(२००५), कृष्णा सोबती-'समय-सरगम' (२०१२), ममता कालिया-'दौड़', रवीन्द्र वर्मा 'पत्थर ऊपर पानी' और डॉ सूरज सिंह नेगी के तीन उपन्यास हैं-'रिश्तों की आंच' (२०१६), 'वसीयत' (२०१८) और 'नियति चक्र' (२०१९) आदि है । उपन्यास के अलावा कई दर्जन कहानियां वृद्ध विमर्श करती आ रही हैं ।

वृद्धावस्था को परंपरा और युवावस्था को प्रगति मानें तो परंपरा से सकारात्मक पाथेय ग्रहण करके ही प्रगति सही दिशा प्राप्त करती है। युवा या नए के जोश में पुराने को पूरी तरह नकारना तात्कालिक दृष्टि से राजनीतिक-सामाजिक आंदोलनों में कुछ हद तक अपेक्षित हो सकता है, पर साहित्य के क्षेत्र में वह वांछनीय नहीं होता । साहित्य में वृद्ध और युवा या फिर पुराने-नए का जो परिदृश्य होता है वह आमने-सामने अवस्थित दो विरोधी शिविरों के बजाय पूर्वापर संबंधों के सह-अस्तित्व का होता है। नया रचने के उपक्रम में युवा या नए रचनाकार पुराने अनुभवों का पुनः सृजन करते हैं, बदलते युग-संदर्भ में उन्हें नवीकृत करते हैं । बूढ़ों या पुराने के अनुभवों से बहुत कुछ श्रेष्ठ, सकारात्मक मूल्यों को आत्मसात करके प्रकट होने वाली रचनाशीलता ही भविष्य की दीपशिखा प्रज्जवलित करने में सक्षम होती है ।

किन्नर विमर्श

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श की शुरुआत उपन्यास सन २००२ में नीरजा माधव के द्वारा रचित 'यमदीप' से मानी जाएगी । इस उपन्यास के बाद से ही साहित्यकारों का ध्यान किन्नर लेखन की तरफ गया । उसके बाद मनमीत पत्रिका में 'किन्नर विशेषांक' निकला जो एक किन्नर जीवन के यथार्थ से जुड़ा हुआ है । जिसके सम्पादक कुमार अरविन्द वे एक पत्रकार हैं, इसके कारण उन्होंने बहुत सारे किन्नर लोगों के साक्षात्कार लिए जिसमें किन्नरों ने अपनी पीड़ा और वेदना प्रकट किया, तो एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि किन्नर विमर्श की शुरुआत सन २००० के बाद ही हुई हैं । वर्तमान समय में साहित्य में कई विश्वविद्यालयों में शोध कार्य भी हो रहा हैं । यमदीप उपन्यास के बाद में कथाकार महेंद्र भीष्म ने 'किन्नर कथा' सन २०१० उपन्यास लिखा और वर्तमान समय में काफी सारे उपन्यास ओर कहानियाँ लिखी जा रही है । हिंदी के प्रमुख किन्नर आधारित उपन्यास यमदीप, किन्नर कथा, मैं पायल और गुलाममंडी,जिन्दगी ५०-५०, प्रदीप सौरभ का तीसरी ताली उपन्यास बहुत ही चर्चित है और हिंदी कहानी संग्रह भी लिखे जा रहे है जैसे हम भी इंसान हैं । वांग्मय आदि इसी के साथ पत्रिका जनकृति में किन्नर विशेषांक निकला गया । साहित्य की इन विभिन्न विधाओं में किन्नर समस्याओ की पड़ताल की गयी हैं । इसी क्रम में मोनिका देवी द्वारा रचित 'सिमरन' उपन्यास भी है जो आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है । उपन्यास और कहानी में पात्रों के माध्यम से किन्नर से जुड़ी संवेदनाओ को प्रकट किया गया । उनकी पारिवारिक उपेक्षा और रिश्तों की तड़प व संवेदनाओं की तलाश और आर्थिक संकट, सामाजिक तिरस्कार, शैक्षणिक और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए किस तरह संघर्ष करते हैं ।

किसान विमर्श

धरती और किसान का अटूट रिश्ता है, वह अपनी जमीन से सर्वाधिक लगाव रखता । वही उसका सब कुछ है । दरअसल कृषक समाजों के लिए कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि उनकी जीवन शैली है । किसान के लिए खेती कोई व्यापार-व्यवसाय भी नहीं है, बल्कि यह तो उसकी रोजमर्रा की जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा है, किसान अपने खेतों से सर्वाधिक लगाव रखता है और वह किसी भी कीमत पर अपने खेत छोड़ने को तैयार नहीं होता । लाख प्रलोभन भी उसे नहीं डिगा पाते, किसान के लिए उसका खेत ही सब कुछ होता है, सब कुछ खोकर भी वह "किसान" बना रहना चाहता है । वह दो बीघे की जायदाद का मालिक कहलाना ज्यादा पसंद करता है और जब-जब उसकी इस धरोहर को छीनने की कोशिश की गई है, तब-तब उसने उग्र रुप धारण किया है और आंदोलन के रास्ते पर उठ खड़ा हुआ है । हर दौर में किसान किसी न किसी रूप से शोषित और प्रताड़ित रहा है । जिसकी अभिव्यक्ति उपन्यासकारों ने की है । किसानों के संघर्षमय जीवन को केन्द्रीय बिंदु बनाकर प्रेमचन्द से कथाकार संजीव और पंकज सुबीर तक एक लम्बी परम्परा रही है।

प्रेमचन्द के 'गोदान' और 'प्रेमाश्रम' उपन्यास के बाद भगवानदास मोरवाल (नरक मसीहा), राजू शर्मा (हलफनामा), जगदीश गुप्त(कभी न छोड़े खेत), विवेकी राय(सोना माटी) कमलाकांत त्रिपाठी(बेदखल) तथा काशीनाथ सिंह (रेहन पर रग्घू), संजीव (फ़ांस) और पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव'। इन उपन्यासकारों ने सामन्ती व्यवस्था, महजनी सभ्यता, जमींदारी प्रथा, जमीन चकबंदी, जमीन से बेदखली, भूमिहीन होना तथा बाजारवाद का साधारण किसानों की चकाचौंध से बदलती संस्कृति, सरकारी बैंको में कर्ज अदायगी न करने की समस्या तथा किसान आत्महत्या इन सारी समस्याओं को लेखक अपने-अपने तरीके से अभिव्यक्ति दी है ।

लेकिन इधर के वर्षो में परिस्थितियां बदली हैं । २१वीं सदी की विभिन्न चुनौतियों ने किसानों के समक्ष बहुत सारे सवाल खड़े कर दिए । वैश्वीकरण और भू-मण्डलीयकरण के प्रभाव ने अन्नदाताओं को आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया । बढ़ते पूंजीवादी प्रभाव ने किसान जीवन को हाशिए पर धकेल दिया है । लेखन की दुनिया में भी आज किसान धीरे-धीरे गायब होता जा रहा है । ऐसे भीषण समय में प्रेमचंद आज भी हमारे लिए प्रासंगिक और समकालीन है क्योंकि न किसानों और जमीन की समस्या हल हुई है न भूमिहीन मजदूरों को श्रम शोषण से मुक्ति मिली है, बल्कि उसमें स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों और अल्प संख्यकों के नये आयाम और जुड़ गए। प्रेमचंद की संवेदना, सरोकार और दृष्टि ही उनकी परम्परा है।

आदिवासी विमर्श

इक्कीसवीं सदी के विमर्शों में आदिवासी विमर्श केन्द्र में है । जहाँ कुछ विमर्श राजनीति में पले तो कुछ अस्मिता व अस्तित्व को लेकर वाद-विवाद के विषय रहें, वहीं आदिवासी विमर्श में राजनीति और अस्मिता दोनों का

समावेश है । आदिवासी गद्य साहित्य की शुरुआत बीसवीं सदी के आठवें दशक में हुई । वाल्टर भेंगरा ने झारखण्ड अंचल और वहाँ के जीवन को केंद्र में रखते हुए 'सुबह की शाम' उपन्यास लिखा । इसे हिंदी का पहला आदिवासी उपन्यास माना जाता है । पीटर पाल एक्का ने 'जंगल के गीत' लिखा । इस उपन्यास में उन्होंने तुंबा टोली गाँव के युवक करमा और उसकी प्रिया करमी के माध्यम से बिरसा मुण्डा के उलगुलान का संदेश पहुंचाया । आदिवासियों द्वारा लिखे गए उपन्यास समकालीन शिल्प और ढाँचों से दूर दिखाई पड़ते हैं । इस कमी की भरपायी गैर आदिवासियों द्वारा लिखे गए आदिवासी उपन्यासों से कुछ हद तक हो गई है । ऐसे उपन्यासों में रमणिका गुप्ता का 'सीता-मौसी', कैलाश चंद चौहान का 'भँवर', रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव का देवता' आदि महत्वपूर्ण हैं । आदिवासियों द्वारा लिखे गए हाल के उपन्यासों में हरिराम मीणा का 'धूणी तपे तीर' सर्वाधिक उल्लेखनीय है । रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' सिर्फ आग और धातु की खोज करनेवाली और धातु पिघलाकर उसे आकार देनेवाली कारीगर असुर जाति के 'जीवन का संतप्त सारांश' है ।

हरिराम मीणा के 'धूणी तपे तीर' में गोविन्द गुरु द्वारा भीलों-मीणों के बीच जागृति फैलाने, संगठित करने और उन्हें अपने हक के लिए बोलना और लड़ना सिखाने तथा बलिदान के लिए तैयार करने की कथा है । यह सन् १९१३ ई. में राजस्थान के बाँसवाड़ा अंचल में स्थित मानगढ़ पहाड़ी के आदिवासियों के बलिदान की सच्ची घटना पर आधारित है । आदिवासियों द्वारा सामंतों और औपनिवेशिक शक्तियों की साम्राज्यवादी मानसिकता के विरुद्ध गोविन्द गुरु के नेतृत्व में शांतिपूर्ण विद्रोह का बिगुल बजाया गया जिसने आगे चलकर औपनिवेशिक दमन की प्रतिक्रिया में हिंसक रूप ले लिया । इस उपन्यास में लेखक ने आदिवासी-अस्मिता को शोषित-उत्पीड़ित वर्ग और शोषक वर्ग के बीच के वृहत्तर पारंपरिक संघर्ष के रूप में देखा है ।

आज आदिवासी साहित्य रचना के नाम पर लेखकों में प्रतिस्पर्धा हो रही हैं । गैर-आदिवासी रचनाकारों द्वारा आदिवासी संस्कृति, जीवन और समाज पर आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है, जबकि उन्हें आदिवासी दर्शन और संस्कृति की पर्याप्त जानकारी तक नहीं है । ऐसी रचनाओं को आदिवासी साहित्य कहकर प्रचारित, पाठित व वाचित किया जा रहा है, तथ्यों को नकारात्मक रूप में पेश किया जा रहा है । ऐसा साहित्य आदिवासी साहित्य को लेकर अधिकांशतः भ्रामक ही सिद्ध हुआ है । गैर-आदिवासी प्रतिमानों द्वारा आदिवासी साहित्य को मूल्यांकित किया जा रहा है । दलित साहित्य की तर्ज पर ही आदिवासी साहित्य की सैद्धांतिकी निर्मित करने के प्रयास जारी हैं । गैर-आदिवासियों का आदिवासी विषयक साहित्य भी साम्राज्यवाद विरोधी अभियान में आदिवासियों को महज आर्थिक संघर्ष के रूप में देखता है । सांस्कृतिक तौर पर भी आदिवासी दर्शन व साहित्य को आर्य संस्कृति में समाहित करने का प्रयास करता है । इस रचाव-बचाव के दौर में कुछ 'आदिवासी' साहित्यकार और बुद्धिजीवी, जिनका सामाजिक वर्ग बदल रहा है या बदल चुका है, गैर-आदिवासी विश्वव्यवस्था की वर्चस्ववादी संस्कृति की शब्दावलियों का इस्तेमाल कर विमर्श को बहुत ही सूक्ष्म ढंग से आदिवासियों के ही खिलाफ ले जाने की कोशिश में लग गये हैं । व्यवस्था के पद-प्रतिष्ठा और पुरस्कारों से लदे ये बुद्धिजीवी आदिवासियों को अविकसित एवं पिछड़ा बताकर व्यवस्था के साथ सामंजस्य बनाने का सुझाव दे रहे हैं । उनके अनुसार आदिवासी समाज और साहित्य तथाकथित मुख्यधारा से अनुकूलन करके ही आधुनिक सभ्यता का लाभ उठा सकता है । इस परिदृश्य में आदिवासी साहित्य की अवधारणा एवं उसकी मूल दार्शनिक आधारभूमि को मजबूती से रेखांकित करना अति आवश्यक है । आदिवासी साहित्य के बारें में सही समझ, सही धारणाएँ निर्मित करना आवश्यक है ।

निष्कर्ष

इस तरह हम पाते हैं कि हिन्दी साहित्य में समयानुसार समाज की समस्याओं पर तीक्ष्णता से नजर डाली गई है । विमर्श के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य की उपलब्धियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण है । तथा इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है जिसमें अनेक सभावनाएँ विद्दमान हैं । साहित्य में स्त्री विमर्श से शुरु विमर्शों की श्रृंखला दिनानुदिन बढती जा रही हैं जो सही मायने में 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' की उक्ति को चरितार्थ कर रही है ।

सन्दर्भ पुस्तक

१.जैन अरविंद, औरत होने की सजा, विकास पेपर बैक्स नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९४, पृ.२०

२.वर्मा महादेवी, 'श्रृंखला की कड़ियाँ', लोकभारती प्रकाशन, पहली मंज़िल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, तीसरा संस्करण : २००८ ; पृष्ठ. ११

३. वर्मा महादेवी ,अतीत के चलचित्र, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९४१, पृ.१६७

४. अग्रवाल डॉ रोहिणी, साहित्य की जमीन और स्त्री-मन के उच्छ्वास, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, १९९३ पृ. ११

५.भारती कँवल, दलित विमर्श की भूमिका इलाहाबाद इतिहास बोध प्रकाशन, परिवर्द्धित संस्करण,२००४, पृष्ठ ६७

६.वाल्मीकि ओमपकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, २००८, पृष्ठ ५९

७.सिंह श्री भगवान, साहित्य में वृद्ध विमर्श (आलेख), जनसत्ता, प्रकाशन वर्ष ९ सितम्बर २०१८

अध्येय पुस्तक

व्होरा आशारानी, आईने और आयाम, नेशनल पब्लिसिंग हाउस दरियागंज, नई दिल्ली, द्वतीय संस्करण, १९९४

झुनझुनवाला मधु भरत, महिला आरक्षण, जनवाणी प्रकाशन प्रा लि विश्वास नगर दिल्ली, १९९९

संपादक डा श्योराज सिंह बेचैन, सामाजिक न्याय और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली २०१४

अन्य

मिश्र अनन्त कुमार 'हिन्दी उपन्यासों में गाँव और किसान' शोध आलेख अपनी माटी इ पत्रिका में प्रकाशित २०१७

आधुनिक चिंतन और साहित्य/आदिवासी विमर्श विकी पुस्तक

इन्द्रदेव शर्मा किसान जीवन के संघर्षों की त्रिवेणी त्रैमासिक ई-पत्रिका अपनी माटी वर्ष-४,अंक-२५ (अप्रैल-सितम्बर,२०१७) किसान विशेषांक